माँग एवं पूर्ति की अवधारणा

- चन्द्रगुप्त मौर्य के मंत्री कौटिल्य ने ''अर्थशास्त्र'' नामक अपनी पुस्तक में राजनैतिक एवं आर्थिक दोनों विचार दर्शाये।
- अरस्तू ने अपनी Economica में अर्थशास्त्र को House Management नाम दिया।
- एड्म स्मिथ को वास्तव में अर्थशास्त्र का जनक कहा जाता है क्योंकि इन्होंने अर्थशास्त्र के सन्दर्भ में फैले हुये सभी विचारों को संकलित कर के वैज्ञानिक रूप अपनी पुस्तक 'An Enquiry into the nature and causes of wealth of nation's' (1776) में प्रकाशित किया।
- एड्म स्मिथ ने अर्थशास्त्र को धन का विज्ञान कहा' इसके समर्थ अर्थशास्त्रियों को क्लासिकल अर्थशास्त्री कहा जाता है जैसे– रिकाडो, माल्थस, जे.बी. से, जे.एस.मिल तथा इरविंग फिशर।

एडम स्मिथ का श्रम विभाजन व विशिष्टीकरण
रिकार्डो का - लगान सिद्धान्त
मालथस - जनसंख्या सिद्धान्त
मार्क्स - श्रम का शोषण

- जे. बी. से– ''अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो धन की विवेचना करता है।''
- प्रो. वाकर– ''अर्थशास्त्र ज्ञान की वह शाखा है, जो धन से संबंधित है।''
- जे.एस. मिल– ''अर्थशास्त्र मनुष्य से संबंधित धन का विज्ञान है।
- मार्शल– ''अर्थशास्त्र धन के विज्ञान के साथ–साथ मानव कल्याण का शास्त्र है।
  ''आदर्श विज्ञान भी मानते हैं (Normative Science)"
- राबिन्स– ''अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो साध्यों (Ends) तथा वैकल्पिक उपयोग वाले सीमित साधनों के सम्बन्ध के रूप में मानव व्यवहार का अध्ययन करता है।''
- 1932 ई. राबिन्स को पुस्तक "An Essay on the Nature and Significance of Economics Science" प्रकाशित हुई। इन्होंने अर्थशास्त्र को चुनाव का विज्ञान कहा।

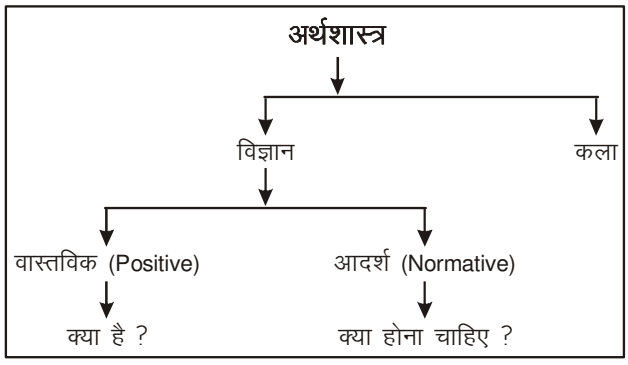

माँग के नियम

माँग के नियम के तीन रूप होते हैं–
- ➢ मूल्य माँग
- ➢ आय माँग तथा
- ➢ आदी माँग

मूल्य माँग :
Dx = f (Px, Y, Po, T, W)
T = फैशन रुचि
W = Wealth

माँग = किसी दिये गये समय, दिये हुये मूल्य पर उपभोक्ता द्वारा खरीदी गयी मात्रा को माँग कहते हैं।

एक माँग वक्र ऋणात्मक मूल्य माँग सम्बन्ध प्रदर्शित करता है। परन्तु निम्न वस्तुओं के सन्दर्भ में मूल्य–माँग सम्बन्ध धनात्मक होगा।

- प्रतिष्ठा सूचक वस्तुएं
- गिफेन वस्तुयें
- मूल्य में वृद्धि का दर तथा कमी की आशा
- अज्ञान तथा श्रम
- जीवन निर्वाह की वस्तुयें

आय माँग : उपभोक्ता की आय तथा वस्तु की माँग के बीच कलात्मक सम्बन्ध।

Dx = f (Y)

यह आय तथा माँगी गयी वस्तु की विभिन्न मात्राओं के बीच सम्बन्ध दिखाता है। वस्तुयें दो प्रकार की होती है–

(क) सामान्य वस्तुयें (क) निम्नकोटि की वस्तु

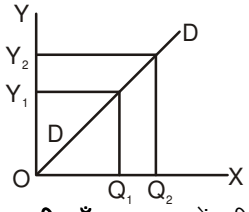

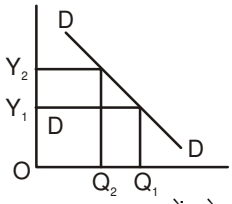

आड़ी माँग : वस्तुओं की माँग तथा अन्य वस्तुओं के मूल्य के बीच फलनात्मक सम्बन्ध Dx = f (Po)

स्थानापन्न : एक वसतु के मूल्य में कमी (वृद्धि) दूसरी वस्तु के माँग में कमी (वृद्धि) ला दे।

उदाहरणार्थ : चाय का मूल्य बढ़ जाय तो अन्य बातों के सामान्य रहने पर काफी की माँग बढ़ जायेगी।

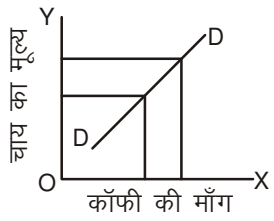

पूरक वस्तुयें : एक वस्तु के मूल्य में कमी दूसरी वस्तु के माँग में वृद्धि ला दे।

उदाहरणार्थ : पेट्रोल के मूल्य में कमी होने पर कार की माँग में वृद्धि।

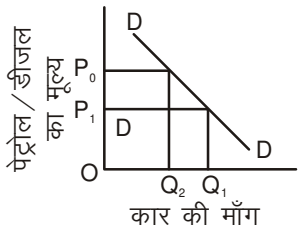

माँग में परिवर्तन :

(क) माँग में विस्तार तथा संकुचन मूल्य में कमी → माँग में वृद्धि → माँग में विस्तार

यह परिवर्तन एक ही माँग रेखा पर पाई जाती है।

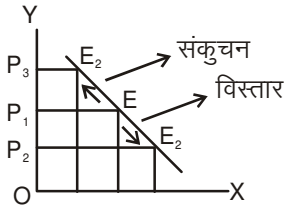

(ख) माँग वक्र का विवर्तन माँग में वृद्धि तथा प्रकर्षण
माँग में कमी तथा विकर्षण

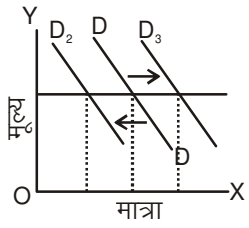

माँग में वृद्धि या कमी के कारण :

- उपभोक्ता की आय तथा संचित धन की मात्रा
- रुचि, फैशन तथा रीति–रिवाज
- आय तथा धन का असमान वितरण
- बाजार में उपभोक्ताओं की संख्या
- भविष्य में वस्तु के मूल्य में परिवर्तन की आशा
- जनसंख्या
- मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन

- मार्शल के सम सीमान्त उपयोगिता के आधार पर माँग वक्र का निर्माण

  उपभोक्ता किसी भी वस्तु का मूल्य उसकी सी. उ. के बराबर ही देता है इसलिए $\frac{MUx}{Px} = MUm$

  उपभोक्ता अपने सन्तुष्टि को अधिकतम करना चाहता है इसलिए वह जैसे–जैसे मूल्य में गिरावट होगी वस्तु की अधिक मात्रा उपभोग करेगा जिससे उसकी सीमान्त उपयोगिता भी गिरेगी और उपभोक्ता सन्तुलन की स्थिति में बना रहेगा–

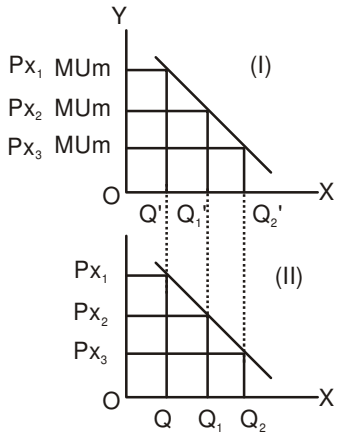

- नियोक्लासिकल MU दृष्टिकोण या उपयोगिता का संख्यात्मक माप (Cardinal Approach) मार्शल का सम सी. उ. दृष्टिकोण
- उपयोगिता का क्रमवाचक माप
  (i) हिक्स–एलेन का अनधिमान दृष्टिकोण
  (ii) सेमुएलसन का व्यक्त अधिमान दृष्टिकोण
- TU, MU तथा AU का संक्षिप्त विश्लेषण

Unit	U	TU	AU	MU
1	8	8	8	8
2	5	13	6.5	5
3	1	14	4.67	1
4	0	14	3.5	0
5	–1	13	2.6	–1

नति परिवर्तन बिन्दु तक तो TU बढ़ती दर से बढ़ता इसके बाद घटती दर से क्योंकि MU गिरना प्रारम्भ कर देती है।

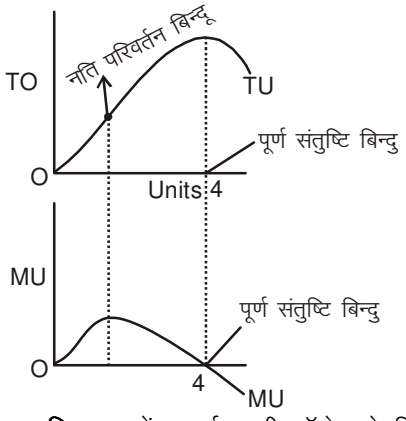

- **MU ह्रास नियम :** फ्रेंच अर्थशास्त्री गॉसेन ने दिया स्टेनले जेवेन्स ने मूल्य निर्धारण में इसका प्रयोग किया और मार्शल ने इसका और विकास किया।
- **मान्यतायें :**
  (1) उपभोग निरन्तर होना चाहिये।
  (2) वस्तु की प्रत्येक इकाई गुण, परिमाणु, स्वाद, बनावट में समान होनी चाहिये।
  (3) रुचि आदत भी स्थिर हो
  (4) मानसिक स्थिति सामान्य हो
  (5) वस्तु का मूल्य स्थिर हो

- **सम सीमान्त उपयोगिता नियम** : गॉसेन का द्वितीय नियम $\frac{MUx}{Px}=\frac{MUy}{Py}=MUm$ स्थिर है। यदि $\frac{MUx}{Px}>\frac{MUy}{Py}$ तो उपभोक्ता x का उपभोग बढ़ायेगा और y का स्थिर या कम करेगा जिससे x का MU गिरेगा y का MU बढ़ेगा जो दोनों को बराबर करेगा।

Units	x की P = 3		y की P = 2	
	MUx	$\frac{MUx}{Px}$	MUy	$\frac{MUy}{Py}$
1	48	16 (3)	40	20 (1)
2	42	14 (5)	36	18 (2)
3	36	12 (7)	32	16 (4)
4	30	10 (9)	28	14 (6)
5	18	6	24	12 (8)
6	6	2	20	10 (10)
7	3	1	10	5

मांग की लोच (Elasticity of Demand) :

$$ep=\frac{+\text{मांग में \% परिवर्तन}}{-\text{मूल्य में \% परिवर्तन}}$$

	p	q	
p	5	8 Km	q
Δ p	10	6 Km	Δ q

$$ep=\frac{\frac{\text{नयी मात्रा}}{\text{पुरानी मात्रा}}}{\frac{\text{नया मूल्य}}{\text{पुराना मूल्य}}}=\frac{\frac{\Delta q}{q}}{\frac{\Delta p}{p}}=\frac{(6-8)}{(10-8)}\times\frac{10}{5}$$

$$=\left(\frac{2}{5}\times\frac{10}{5}\right)=+.25\%$$

$$\boxed{-\frac{\Delta q}{\Delta p}\times\frac{p}{q}}$$

मांग का नियम सिर्फ दिशा बताता है जबकि मांग की लोच वास्तविक प्रभाव को बताता है इसके मुख्यतः 5 भाग हैं–

(1) पूर्णतया लोचदार माँग
(2) पूर्णतया बेलोचदार माँग
(3) इकाई माँग की लोच
(4) इकाई से अधिक माँग की लोच (<1)
(5) इकाई से कम माँग की लोच (>1)

(1) पूर्णतया बेलोचदार माँग : जब मूल्य का प्रभाव माँग पर बिल्कुल न पड़े तब माँग की लोच पूर्णतया बेलोचदार होगी।

$$\boxed{ep=0}$$

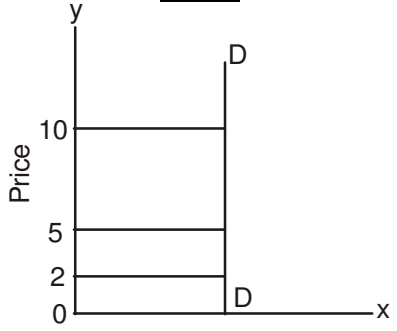

(2) पूर्णतया लोचदार माँग वक्र :

$$\boxed{ep=\infty}$$

यदि मूल्य में थोड़ा सा भी वृद्धि कर दी गई मात्रा को शून्य कर दे तो माँग की लोच पूर्णतया लोचदार पाई जाएगी या अनन्त माँग की लोच।

(3) इकाई माँग की लोच :

$$\boxed{ep=1}$$

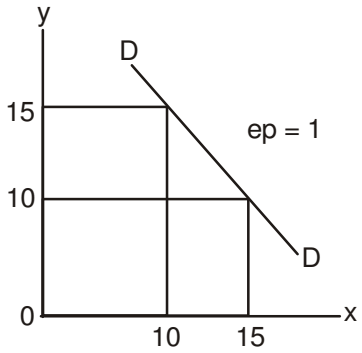

यदि मूल्य में परिवर्तन के बराबर ही मात्रा में परिवर्तन हो तो माँग की लोच इकाई के बराबर होगी यह आवश्यक वस्तुओं के सन्दर्भ में पाया जाता है।

(4) इकाई से अधिक लोचदार माँग :

ep > 1

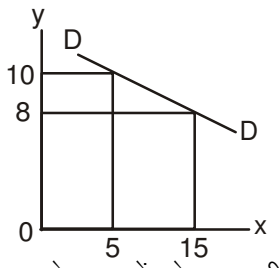

यदि किसी वस्तु के मूल्य में थोड़ा सा भी परिवर्तन उसकी माँगी गई मात्रा में अत्यधिक परिवर्तन ला दे तब इस स्थिति में मांग की लोच इकाई से अधिक पाई जाएगी जैसा कि विलासिता की वस्तुओं के सन्दर्भ में देखा जाता है।

(5) इकाई से कम लोचदार माँग : मूल्य के परिवत्रन के तुलना में खरीदी गई मात्रा में कम परिवर्तन होता है। ऐसा अतिआवश्यक वस्तुओं के सन्दर्भ में पाया जाता है।

ep < 1

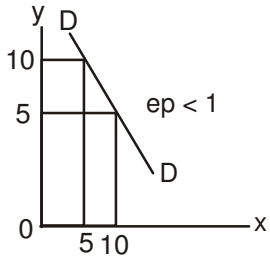

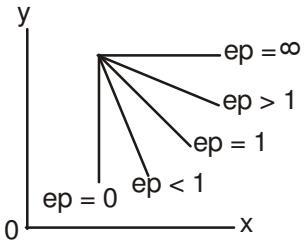

बाजार

पूर्ण प्रतियोगी बाजार : पूर्ण प्रतियोगी बाजार को समझने से पूर्व हम बाजार को हम पहले समझ लेते हैं। बाजार को लेकर अर्थशास्त्रियों में विभिन्न मत पाए जाते हैं बाजार को दो वर्गों में बांटा गया है–

(1) क्षेत्र के आधार पर : इसके चार रूप होते हैं–
- (i) स्थानीय बाजार
- (ii) प्रावेशिक या क्षेत्रीय बाजार
- (iii) राष्ट्रीय बाजार
- (iv) अन्तराष्ट्रीय बाजार

(2) समय के आधार पर : इस प्रकार का वर्गीकरण मार्शल द्वारा किया गया।
- (i) अति अल्प कालीन बाजार
- (ii) अल्प कालीन बाजार (1 महीने से 1 साल तक)
- (iii) दीर्घ कालीन बाजार (6 वर्ष – 15 वर्ष तक)
- (iv) अति दीर्घ कालीन बाजर

पूर्ण प्रतियोगी बाजार की विशेषताएँ –

(1) क्रेताओं व विक्रेताओं की अधिक संख्या पाई जाती है।

(2) वस्तुओं की एकरूपता अर्थात् वह सभी वस्तुएँ समरूप हैं इसलिए परस्पर पूर्ण स्थानापन्न।

(3) क्रेता और विक्रेता को बाजार सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान है। उद्योग में फर्मों का प्रवेश तथा निकासी स्वतन्त्र रूप से पाया जाता है इसलिए दीर्घ काल में फर्में सामान्य लाभ (Normal Profit) अर्जित करेंगी।

(4) उत्पादन के साधनों में पूर्ण गतिशीलता पाई जाती है अर्थात् एक रोजगार में दूसरे रोजगार में जाने की स्वतन्त्रता।

(5) वस्तुओं की परिवहन व विक्रय लागत का आभाव पाया जाता है।

(6) सरकार द्वारा इस पर कोई करारोपण या प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता।

(7) फर्में मूल्य स्वीकारक होती हैं और मूल्य का निर्धारण उद्योग द्वारा किया जाता है। फर्मों का समूह ही उद्योग कहलाता है।

औसत आय सीमान्त आय–

(AR)		(MR)		
Q	P	TR = Q×P	$AR = \frac{TR}{Q}$	MR= TRn – TRn –1
1	10	10	10	10
2	10	20	10	10
3	10	30	10	10
4	10	40	10	10

औसत लागत, सीमान्त लागत

Q	C	Q×C = TC	AC	TCn – Ten – 1 MC
1	20	20	20	20
2	15	30	15	10
3	12	36	12	36
4	10	40	10	4
5	12	60	12	20
6	15	90	15	30
7	20	140	20	50

अल्प काल (Short Period) (0–1 वर्ष) : इस अवधि में समय इतना कम रहता है कि उत्पादन में वृद्धि परिवर्तन शील साधनों (श्रम, कच्चा) में वृद्धि के माध्यम से होती है जबकि स्थित साधन (भवन, मशीन) में परिवर्तन नहीं होता।

दीर्घ काल (5 से अधिक 15 से कम) : इस काल में समय इतना अधिक होताहै कि परिवर्तनशील साधनों के साथ–साथ स्थिर साधनों में भी परिवर्तन के माध्यम से उत्पादन को समायोजित किया जा सकता है दोनों साधन परिवर्तनशील होते हैं।

दीर्घ काल में संतुलन : फर्मों का समूह ही उद्योग होता है उद्योग द्वारा निर्धारित मूल्य पर फर्में दीर्घ काल में दीर्घ कालीन औसत लागत वक्र के न्यूनतम बिन्दू पर उत्पादन करेंगी जहाँ पर उनहें सामान्य लाभ अर्जित होगा।

अल्पकाल में फर्म सामान्य लाभ (AR = AC) :

हानि = $\boxed{AC > AR}$

असामान्य लाभ AR > AC

तीनों स्थितियों में हो सकती है लेकिन दीर्घ काल में फर्म सिर्फ सामान्य लाभ ही अर्जित करेगी।

एकाधिकार : एकाधिकार का शाब्दिक अर्थ अकेला विक्रेता है अर्थात् पूर्ति पर किसी एक विक्रेता का अधिकार या नियन्त्रक यह पूर्ण प्रतियोगिता की पूर्णतः विपरीत स्थिति है। इसके उत्पादक या विक्रेता ऐसी वस्तु उत्पादित करता है। जिसका कोई नजदीकी स्थानापन्न न हो। एकाधिकारी वस्तु की पूर्ति को नियन्त्रित करके मूल्य को घटा–बढ़ा सकता है। ऐसे में वह विभिन्न बाजारों में मूल्य विभेद भी कर सकता है। ऐसे में वह विभिन्न बाजारों में मूलय विभेद भी कर सकता है। मूल्य विभेद के लिए आवश्यक है कि विभिन्न बाजारों में मांग की लोच अलग–अलग हो या बाजारों के बीच इतनी पर्याप्त दूरी हो सके क्रेता सस्ते बाजार से सामान खरीद कर महंगे बाजार में बेचने में असफल हो। एकाधिकार में औसत आय तथा सीमान्त आय वक्र दोनों ऊपर से नीचे दाहिनी तरफ गिरते हुए होते हैं। एकाधिकार में संतुलन के लिए दो विधियाँ प्रचलित है।

कुल आय : कुल लागत– RTC एकाधिकारों का लाभ उस बिन्दु पर अधिकतम् होगा जहाँ पर कुल आय और कुल लागत का अन्तर ज्यादा हो।

अल्प अधिकार काल में एकाधिकार की संस्थिति : अल्प काल में एकाधिकारी में में मांग के अनुसार पूर्ति में समायोजन केवल परिवर्तनशील साधनों (श्रम व कच्चा माल) में परिवर्तन के द्वारा ही कर सकती है। ऐसे में उसे सामान्य लाभ असामान्य लाभ तथा हानि की स्थिति हो सकती है।

सामान्य लाभ : जब फर्म की औसत आय, औसत लागत के बराबर हो तब उसे सामान्य लाभ की प्राप्ति होगी अर्थात् उसकी प्रति इकाई आय प्रति इकाई लागत के बराबर हो।

असामान्य लाभ (AR > AC) : जब फर्म को प्रापत होने वाली प्रति इकाई औसत आय, प्रति इकाई लागत (AC) से अधिक हो तब उसे असामान्य लाभ की प्राप्ति होगी।

हानि की स्थिति (AR < AC) : जब फर्म को प्राप्त होने वाली लागत (AC) से कम हो तब उसे हानि की स्थिति प्राप्त होगी हानि की स्थिति में यदि एकाधिकारी को औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) से कम मूल्य प्राप्त होगा तो एकाधिकारी उद्योग छोड़कर बाजार चली जाएगी।

एकाधिकार में मूल्य निर्धारण तथा मांग की लोच : एकाधिकारी को दीर्घ काल में सदैव असामान्य लाभ प्राप्त होता है वह अपनी वस्तु का मूल्य मांग वक्र के उस भाग में निर्धारित करता है जहाँ पर माँग की लोच इकाई से अधिक होगी।

प्रतियोगिता तथा फर्मों की संख्या के आधार पर बाजार का वर्गीकरण : 1926 से पूर्व पूर्ण प्रतियोगिता तथा एकाधिकार के अलावा बाजार की अन्य दशाओं की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। 1926 में पियरों Sraffa ने अपने आर्थिक लेख में उपरोक्त दोनों बाजारों की आलोचना करते हुए कहा कि व्यवहारिक जतीवन में पूर्ण प्रतियोगिता व एकाधिकार के स्थान परअपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति पायी जाती है इस समस्या का उचित समाधान 1933 में प्रोफेसर चेम्बर लीन की पुस्तक Theory of Monogolistic Compitation तथा श्रीमती जॉन रॉबिन्सन की पुस्तक Economics of Impersect compition के माध्यम से हुआ।

लगान

Classical अर्थशास्त्रियों ने लगान की परिभाषा अलग–अलग शब्दों में दी रिकार्डो से पहले विलियम पेटी ने लगान को अधिशेष या बचा हुआ के रूप में बताया। परन्तु रिकार्डो ने इसे व्यवस्थित रूप में परिभाषित किया। रिकार्डो के अनुसार 'लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भूमि के मालिक को भूमि के मौलिक व अविनाशी शक्तियों के उपयोग के लिए दिया जाता है।''

लगान निम्नवत कारणों से उत्पन्न होता है–

(1) भूमि की पूर्ति पूर्णतया स्थिर या पूर्णतया बेलोचदार है।

(2) भूमि के विभिन्न टुकड़े भिन्न–भिन्न उर्वरा शक्ति के होते हैं।

(3) भूमि का केवल एक ही प्रयोग है।

(4) भूमि के बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है।

(5) उत्पादन में क्रमागत उत्पादन ह्रास नियम लागू है।

इन्होंने कहा लगान दो कारणों से उत्पन्न होता है।

(1) दुर्लभता का लगान (Scarcity) : उपजाऊ भूमि की पूर्ति दुलर्भ होती है और इसके प्रत्येक टुकडत्रे पर उत्पादकता समान होती है। जनसंख्या वृद्धि के कारण भूमि की मांग इतनी बढत्र जाए कि अप्रयुक्त भूमि न रह जाए। फलस्वरूप अनाज की मांग में वृद्धि मूल्य में वृद्धि लाएगी। मूल्य में वृद्धि औसत उत्पादन लागत से अधिक होगी। मूल्य और औसत लागत का अन्तर ही लगान कहलाएगा।

(2) भेदात्मक लगान :

भूमि की श्रेणी	लागत	उत्पादन	लगान
A	100	400	400 – 100 = 300 अधि सीमान्त भूमि
B	100	300	300 – 100 = 200
C	100	200	200 – 100 = 100
D	100	100	100 – 100 = 0 सीमान्त भूमि

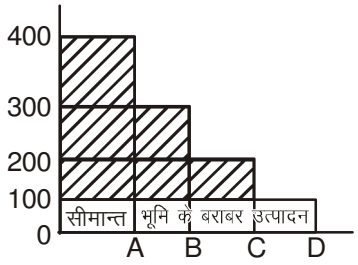

रिकार्डो का मानना है कि भूमि के प्रत्येक टुकड़े अलग–अलग उर्वरकता वाले हैं। प्रारम्भ में जनसंख्या अपने आस–पास की भूमि के उस टुकड़े पर उत्पादन करेगी जिसकी उर्वरकता अधिक है। वह उत्पादन औसत लागत के न्यूनतम बिन्दु पर होगा। दीर्घकाल में जैसे–जैसे जनसंख्या की वृद्धि के कारण मांग में वृद्धि होगी अधिक उत्पादन करेगा। यह प्रक्रिया तब तक बढ़ेगी जब तक सम्पूर्ण भूमि समाप्त नहीं हो जाती और अन्त में ऐसी स्थिति आएगी जब सबसे खराब भूमि पर लागत के बराबर उत्पादन होगा जो D प्रकार की भूमि से स्पष्ट है। D प्रकार की भूमि सीमान्त भूमि अर्थात् लगान रहित भूमि है और A प्रकार की भूमि अधि सीमान्त (Super Marginal) प्रकार की है।

दीर्घ काल में जनसंख्या में वृद्धि खाद्यान्न की मांग में वृद्धि लाती रहेगी। ऐसे में गहन खेती प्रारम्भ की जाएगी। जिससे उत्पादक AC (Average Cost) के न्यूनतम बिन्दु से आगे बढ़ते हुए भाग में उत्पादन करेगा क्योंकि खाद्यान्नों की माँग मूल्य स्तर को बढ़ा देगी।

उत्पादन फलन और उसके नियम

उत्पादन की क्रिया को सम्पन्न करने के लिए एक उत्पादक भूमि, श्रम, पूंजी, साहस तथा संगठन जैसे 5 साधनों का प्रयोग करता है। उदाहरण के लिए एक पंखे का उत्पादन करने के लिए कच्चा लोहा, कोयला जैसे कच्चे माल की आवश्यकता होती है इसे आगत या Inputs कहते हैं। इसके सहयोग से जिस पंखे का उत्पादन होगा उसे निर्गत या Output कहते हैं एक उत्पादक का उद्देश्य Inputs की न्यूनतम मात्रा से अधिक Output प्राप्त करना है। अगतों तथा निर्गतों के बीच इस तकनीकी सम्बन्ध को उत्पादन फलन कहते हैं।

उत्पादन के नियम : उत्पादन के तीन नियम पाए जाते हैं।

(1) वृद्धिमान प्रतिफल का नियम (Law of Inoreasing Return) : यदि जिस अनुपात में Inputs (आगतों) में वृद्धि की जाए उससे अधिक वृद्धि उत्पादन में हो निर्गत हो में हो उसे वृद्धि मान या वर्धमान का नियम कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि साधनों की मात्रा दोगुनी कर दी जाए और उत्पादन में वृद्धि दोगुना से अधिक हो जाए।

(2) स्थिर प्रतिफल का नियम (Law of Constant Returns) : यदि उत्पादन के साधनों की मात्रा जिस अनुपात में बढ़े उस अनुपात में उत्पादन में वृद्धि हो तो इसे स्थिर प्रतिफल का नियम कहते हैं। उदाहरण के लिए साधन की मात्रा दोगुना कर दी जाए तो उत्पादन में भी वृद्धि दोगुनी हो जाए।

10 = f (2)

20 = f (4)

30 = f (6)

(3) ह्रासमान प्रतिफल का नियम (Law of Derreasing Returns) : जिस अनुपात में साधनों की मात्रा में वृद्धि की जाए उससे कम अनुपात में उत्पादन में वृद्धि हो। उदाहरण के लिए यदि साधनों की मात्रा दोगुनी कर दी जाए तो उत्पादन में वृद्धि दोगुने से कम हो।

10 = f (2)

18 = f (4)

25 = f (6)

राष्ट्रीय आय की अवधारणा

- ''राष्ट्रीय आय से अर्थ किसी देश में एक वर्ष के मध्य उत्पादित सभी वस्तुओं एवं सेवाओं` बाजार–मूल्य के कुल जोड़ से है जिसे ह्रास घटाकर व विदेशी लाभ जोडत्रकर निकाला जाता है।''
- एक देश की राष्ट्रीय आय निम्न पाँच प्रकार से प्रकट की जाती है–

1. सकल राष्ट्रीय उत्पादन अथवा सकल घरेलू उत्पाद

(Gross National Product or GNP or Gross Domastic Product)

- ➢ सकल राष्ट्रीय उत्पादन से अर्थ एक वर्ष में उत्पादित होने वाली सभी वस्तुओं और सेवाओं के बाजार–मूल्य के जोड़ से है। इसमें स्थायी सम्पत्तियों पर होने वाले ह्रास को नहीं घटाया जाता है।
- ➢ वास्तव में, सकल राष्ट्रीय उत्पादन दो अनुमानों को जोड़ है–
  - ❍ देश में उत्पादित सभी वसतुओं के मूल्य एवं
  - ❍ विदेशों से प्राप्त शुद्ध आय।
- ➢ सकल राष्ट्रीय उत्पादन एवं राष्ट्रीय आय में अन्तर है। सकल राष्ट्रीय उत्पादन देश के सम्पूर्ण उत्पादन (ह्रास बिना घटाये ही) का बाजार–मूल्य होता है जबकि राष्ट्रीय आय शुद्ध उत्पादन (ह्रास घटाने के बाद) होता है।
- ➢ सकल राष्ट्रीय उत्पादन में चालू वर्ष में उत्पन्न वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य को ही शामिल किया जाता है।

2. शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन अथवा शुद्ध घरेलू उत्पाद

(Net National Product or NNP or Net Domestic Product)

- ➢ सकल राष्ट्रीय उत्पादन में ह्रास (depreciation) घटाने के बाद जो शेष रहता है, वह शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन या शुद्ध घरेलू उत्पाद कहलाता है। गणितीय रूप में यह NNP or NDP = (GNP or GDP – Depreciation) है।

3. राष्ट्रीय आय (National Income)

- ➢ इसे 'साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय आय' (Net National Product Factor Cost) भी कहते हैं। इसकी गणना हेतु शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन (NNP) में से अप्रत्यक्ष करों (Indirect taxes) को घटा दिया जाता है, किन्तु सरकार द्वारा दी गयी सहायता (Subsidies) जोड़ दी जाती है।

4. व्यक्तिगत आय या घरेलू उत्पादन

(Personal Income or Net Domestic Product)

- ➢ यह आय वह आय है जो कि वास्तव में देश की जनता द्वारा एक वित्तीय वर्ष में प्राप्त की जाती है। इसकी गणना निम्न प्रकार की जाती है–
  व्यक्तिगत आय = राष्ट्रीय आय – [निगम व कम्पनियों पर कर + कम्पनी के अवितरित लाभ + प्रॉविडेण्ट फण्ड में अंशदान–(सरकार द्वारा सामाजिक सुधार पर व्यय)]।

5. व्यय योग्य आय (Disposable Income)

- ➢ इसका तात्पर्य है जनता के पास वह शुद्ध आय है, जिसे जनता व्यय करने को तत्पर है। ऐसी आय की गणना के लिए व्यक्तिगत आय में से व्यक्तिगत प्रत्यक्ष करों को घटा दिया जाता है।

नोट :

- ♦ भारत की राष्ट्रीय आय का प्रथम आंकलन 1867–68 में दादाभाई नौरोजी द्वारा किया गया था।
- ♦ वर्तमान में भारत सरकार का केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन (CSO) भारत की राष्ट्रीय आय की गणना करता है।

भारत की राष्ट्रीय आय में क्षेत्रवार योगदान :

1. प्राथमिक क्षेत्र

कृषि, वानिकी, मत्स्य, खनन

2. द्वितीयक क्षेत्र

निर्माण एवं विनिर्माण

3. तृतीयक क्षेत्र

- व्यापार, परिवहन, संचार, बैंक, बीमा, वास्तविक जायदाद, सामाजिक सामुदायिक एवं वैयक्तिक सेवाएँ।
- योजनाकाल के 53 वर्षों के बाद राष्ट्रीय आय में प्राथमिक क्षेत्र का योगदान कम हुआ है तथा द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों का योगदान बढ़ा है। वर्तमान में तृतीयक क्षेत्र सर्वाधिक, उसके बाद द्वितीय क्षेत्र और फिर प्राथमिक क्षेत्र का योगदान है।

राष्ट्रीय जनगणना–2011 के सम्बन्ध में

राष्ट्रीय जनगणना–2011 भारत की 15वीं (1872 ई. से प्रारम्भ) एवं स्वतंत्र भारत की 7वीं जनगणना है। 31 मार्च, 2011 को **'हमारी जनगणना हमारा भविष्य'** (Our Census Out Future) शीर्षक वाक्य के साथ जनगणना 2011 के अनंतिम आंकड़ों को गृहसचिव **जी.के. पिल्लै** की उपस्थिति में महापंजीयक व जनगणना आयुक्त (Registrar General and Census Commissioner) **सी. चन्द्रमौलि** ने जारी किया। जनगणना का कार्य दो चरणों में सम्पन्न किया गया। **प्रथम चरण** में **गृह सूचीकरण एवं आवासीय जनगणना** (House listing & Housing Census) कका कार्य 1 अप्रैल से 30 सितम्बर, 2010 के मध्य किया गया। जबकि **दूसरे चरण** में **जनसंख्या प्रगणन** (Population Enumeration) का कार्य 9 फरवरी, 2011 से 28 फरवरी, 2011 के मध्य की गयी। **संदर्भ तिथि** (Reference Date) 1 मार्च, 2011 की मध्य रात्रि (0.00 Hours) है। **बर्फ–अवरूद्ध** (Snow-bound) **क्षेत्रों** (जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखण्ड के कुछ क्षेत्र) की जनगणना के प्रगणन का कार्य 11 सितम्बर से 30 सितम्बर, 2010 के बीच किया गया जिसकी **संदर्भ तिथि 1 अक्टूबर, 2010 की मध्य रात्रि** (0.00 Hours) रही।